डर

बचपन के डर-अपडर

अनामिका

मेरी माँ त्यौहारों के कपड़े लेने पटना के "हथुआ मार्केट" जाया करती थी। जब पिताजी की पटना में कोई बैठक होती, हम उनके साथ लग लेते। वह हमारी छोटी-सी पिकनिक हो जाती थी! अगर गर्मियों के दिन हों तो धूप जिधर होती, पिताजी ज़बर्दस्ती उसी दिशा में बैठते ताकि मैं और माँ धूप से महफूज़ रह सकें! अगर हम ज़िद भी करते तो वे मानते नहीं! जाड़े में ठीक इसका उल्टा होता! पिताजी और ड्राइवर बाबा से तरह-तरह के किस्से सुनते हुए हम सारा रास्ता काटते! बीच में एक जगह आती – भगवानपुर। वहाँ हाइवे पर चाय का एक ढाबा बहुत ही मशहूर था! मुजफ्फरपुर और पटना के बीचों-बीच स्थित उस ढाबे के पेड़े भी खासे मशहूर थे! पेड़े वाले की आँख पर हरदम पट्टी बँधी रहती। उसके ओंठ भी उसकी तरह ही कुछ तुंदिल से थे – आगे को निकले हुए। उसे देखकर मेरे मन में अज्ञात डर भर जाता। अपनी एक आँख उठाकर वह देखता ही इस भाव से था मानो हम भी एक छोटा-सा पेड़ा हों ... अभी उठाकर हमें वह मुँह में डाल लेगा! अपने यहाँ काम करने वाले लड़कों के प्रति भी उसका रवैया काफी अजीब होता! उन्हें तो वह उन मक्खी-मधुमक्खियों से भी तुच्छ समझता जो उसके पेड़ों के इर्द-गिर्द मँडराती – एक गमछे से वह लगातार उन्हें हाँकता झाड़ता और उसी तरह हाँकता-झाड़ता सब छोटुओं को जो लगातार इधर-उधर दौड़ते ही दीखते!

इसी तरह एक बाँसुरीवाला था जिसकी आँखें नीली और चमड़ी एकदम सफेद थी। शायद वह कोई कश्मीरी विस्थापित था! वह चुपचाप बाँसुरी बजाता था – बाज़ार के एक कोने में, पीपल के नीचे। लेकिन उसकी मुस्कुराहट में कुछ ऐसा था कि मैं डर जाती। इसी तरह का भय मुझे शुरू-शुरू में अपनी ऐंग्लो इण्डियन शिक्षिकाओं से भी लगता था जो बिल्कुल भी नहीं मुस्कुराती थी! यानी मुस्कान का अतिरेक और अभाव – दोनों मेरे चित्र में दहशत-सी पैदा करते थे!

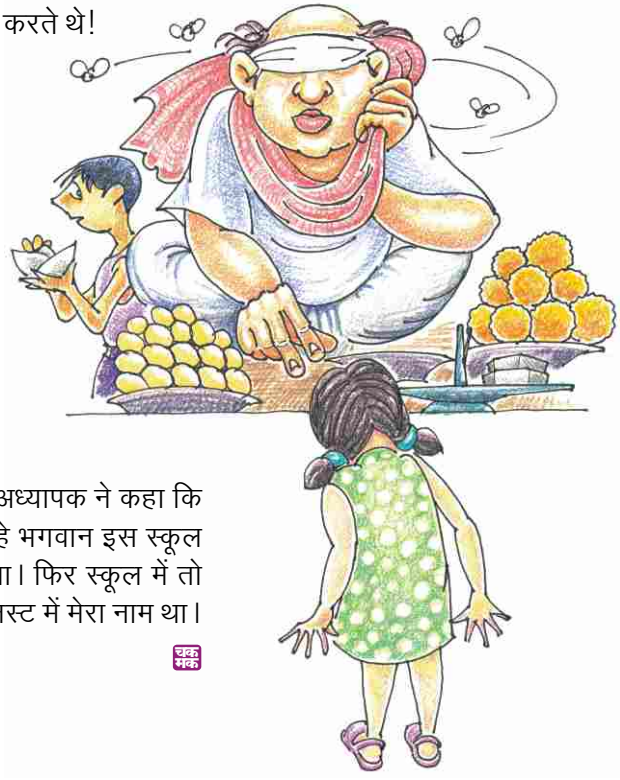

स्कूल से बहुत डरता था

विष्णु नागर

बचपन में मुझे स्कूल जाना बिल्कुल पसन्द नहीं था। शाजापुर तब और भी छोटा कस्बा था, लेकिन घूमने-भटकने की जगह वहाँ काफी थीं। उधर मेरी गरीब माँ का दबाव था कि पढ़ूँ-लिखूँ, आवारा न बनूँ। वह स्कूल भेजना चाहती थी और मैं भटकना। एक दिन मुझे ढूँढ़कर प्यार-से घर लाया गया और रस्सी से बाँधकर खूब पिटाई की गई। मैं रोया-चिल्लाया पर समझ गया कि अब माँ के आगे झुकना ही पड़ेगा। खैर, मारने-पीटने के बाद मेरे दोनों हाथ बाँधकर और हाथों में स्कूल की स्लेट-किताब की छोटी पेटी थमाकर सरे-बाज़ार मुझे स्कूल ले जाया गया। इस सबसे मैं आतंकित हो गया। स्कूल जाने लगा। लेकिन मेरे पहले अध्यापक भी क्या कहूँ, पूरे जल्लाद थे। खूब मारते थे। अपने पास हरी बेंत रखते थे और गलती करो तो हाथ पर बेंत पड़ती थीं। एक बार तो याद है कि मैं एक सवाल हल करके ले गया। पहली नज़र में उन्हें लगा कि इसने गलत हल किया है तो मारा। मारने के बाद उन्हें सन्देह हुआ कि शायद सवाल सही है। दुबारा जाँचा। सवाल मैंने सही हल किया था। कहा, चल तूने ठीक किया है। जा, अपनी जगह पर बैठ जा और मैं बैठ गया। उनसे टट्टी-पेशाब की छुट्टी माँगते भी डर लगता था। एक दिन तो पेशाब कक्षा में ही निकल गया। जहाँ मैं बैठा था, ओखली थी। उसमें चला गया। बाद में, पता चला तो माँ को आकर साफ करना पड़ा। एक दिन इन अध्यापक ने कहा कि स्कूल में चौथी क्लास भी खुलेगी। मैं डर गया। भगवान से प्रार्थना की कि हे भगवान इस स्कूल और इस मास्टर से बचाना! मैं बच गया। बाद में स्कूल का भय घटता गया। फिर स्कूल में तो मज़ा आने लगा, जहाँ से मैंने आठवीं पास की। उस साल ज़िले की मेरिट लिस्ट में मेरा नाम था।